इमाम हसन (अ०) फ़त्हे कर्बला की बुनियाद रखने वाले

प्रोफ़ेसर अल्लामा अली मुहम्मद नक़वी साहब क़िब्ला
अनुवादकः बिन्ते ज़हरा नक़वी ''नदल हिन्दी'' साहेबा

अल्लाह तआला ने अइम्मा को उम्मत के लिए नमूना बनाया है। इसी वजह से हर इमाम[अ०] को सियासी और समाजी माहौल अलग-अलग तरह का मिला ताकि समाज में मौजूद अलग-अलग मसअलों से मुताल्लिक़ उनका रद्देअमल सामने आये और इस तरह मुसलमानों के अमली राहनुमा बन सकें। उन्होंने मुख़ालिफ़ों के मुक़ाबले के अलग-अलग अन्दाज़ और तरीक़े अपनाये और ये दिखाया है कि मुसलमानों को चाहिए कि ज़माने के हालात के मुताबिक़ लाएह-ए-अमल इख़्तियार करें, मगर इन सबका मुत्तफ़ेक़ा मक़सद दीन की हिफ़ाज़त और इस्लाम की बरतरी हो। इमामों के मुक़ाबले की सूरतें और ढंग तो मुख़्तलिफ़ थे मगर मक़सद एक था। फ़र्क़ सिर्फ़ ये था कि किसी ने हथियार वाली जंग के ज़रिये मक़सद में कामयाबी हासिल की, किसी ने सुल्ह के ज़रिये। इन तमाम पेश्वाओं में इमाम हसन[अ०] के हालात और उनकी जंग का अन्दाज़ एक मख़सूस खुसूसियत का हामिल है।

इमाम हसन[अ०] मुलूकियत के मुक़ाबले में इमामत के अलमबरदार हैं

मुआविया इस्लाम के सियासी निज़ाम को ''इमामत'' से बदलकर ''मुलूकियत'' (शाही/साम्राज्य) की शक्ल में लाने के बानी और नमूना हैं। जो मुक़ाबला इमाम हसन[अ०] और मुआविया के दरमियान हुआ वह दरअस्ल इमामत और मुलूकियत का मुक़ाबला था।

''इमामत'' का आख़री मक़सद इस्लाम को रवाज देना था जबकि इसके उलट ''मुलूकियत'' का मक़सद इस्लाम के नाम पर हुकूमत पाने के लिए हर साज़िश का इस्तेमाल करना था, जबकि ''इमामत'' सख़्ती के साथ इस्लामी उसूलों की पाबन्द रही।

''मुलूकियत'' सिर्फ़ उसी हद तक इस्लाम की नाम लेवा थी और उसे मानती थी जिस हद तक इस्लाम को मानना और उसका नाम लेना अवाम को फ़रेब के जाल में फंसाने में फ़ायदेमन्द हो जबकि ''इमामत'' उसी हद तक इक़्तेदार चाहती थी जितना इस्लाम की हिफ़ाज़त के लिए फ़ायदेमन्द हो, यहाँ तक कि 'इमामत' इस्लाम की हिफ़ाज़त के लिए हुकूमत छोड़ देने तक को तैयार थी। इसका अक़ीदा ये था कि जो हुकूमत इस्लाम की ख़िदमत के काम न आये उस इक़्तेदार की कोई क़ीमत नहीं है।

'इमामत' का ध्रुव हक़ीक़त थी और उसका मेयार क़ुरआन और सुन्नत था जबकि मुलूकियत बनाम इस्लाम ज़ाती फ़ायदों के गिर्द घूम रही थी और उसका मेयार ईरान और रोम का दरबार (साम्राज्य) था। चुनानचे ''मुलूकियत'' ''मस्लेहत पसन्द'' रही और ''इमामत'' ''हक़ीक़त पसन्द'' इसी वजह से ''इमामत'' में इक़्तेदार मौरूसी नहीं होता जबकि ''मुलूकियत'' में हुकूमत मौरूसी होती है। 'इमामत वाले इस्लाम' में सियासी मराकिज़ मस्जिदें होती हैं जबकि 'मुलूकियत वाले इस्लाम' में

अज़ीमुश्शान महल सियासी मराकिज़ होते हैं। इमामत वाले इस्लाम में बैतुलमाल को ख़ुदा और उम्मत की अमानत तसव्वुर किया जाता है और हुकूमती इस्लाम में ख़लीफ़ा का ज़ाती माल समझा जाता है। इमामत वाले इस्लाम में तमाम समाजी काम अवाम के मश्वरे से होता है और अवाम को इसका हक़ होता है कि जायज़ की मुवाफ़िक़त और नाजायज़ की मुख़ालेफ़त करें जबकि इसके बरअक्स मुलूकियत में अवाम की ज़बानों पर ताले लगा दिये जाते हैं, हजर बिन अदी जैसे लोग शहीद कर दिये जाते हैं, क़त्ल व ग़ारतगरी, ख़ौफ़ और दहशत, ज़ुल्म और जब्र और पाबन्दी का निज़ाम रायज होता है। इमामत में क़ाज़ी अहकामे ख़ुदावन्दी के मुताबिक़ फ़ैसला करता है और मुलूकियत में ख़लीफ़ा की ज़रूरत और मर्ज़ी के मुताबिक़ अहकामात नाफ़िज़ होते हैं।

इमाम हसन[अ०] और मुआविया का मुक़ाबला इक़्तेदार के दो दावेदारों का मुक़ाबला नहीं है बल्कि "इमामत और मुलूकियत का मुक़ाबला है, दो तर्ज़े फ़िक्र और दो राहे अमल का मुक़ाबला है। इमाम हसन[अ०] जिन लोगों के मुक़ाबले पर थे, वह हक़ीक़त में मुसलमान नहीं थे बल्कि इस्लाम की नक़ाब में इस्लाम दुश्मन अनासिर थे। भेड़ की खाल में भेड़िये थे। ये वह इन्क़ेलाब मुख़ालिफ़ लोग थे जिनको मक्के के मुश्रिकों के सरदार अबुसुफ़यान ने जनम दिया था, जिनके दिल में इन्क़ेलाबे इस्लाम के ख़िलाफ़ कीने का ज्वालामुखी फूट रहा था। ये लोग अन्दर ही अन्दर धीरे-धीरे इन्क़ेलाब (इस्लाम) के ख़िलाफ़ खिचड़ी पका रहे थे। उस मौक़े पर जबकि मेयार (Quality) को मिक़दार (Quantity) पर क़ुर्बान किया जा रहा था, इमाम हसन[अ०] इन इन्क़ेलाब मुख़ालिफ़ों से नबरदआज़माँ थे जो "मुलूकियत बनाम इस्लाम" की सूरत में नमूदार हुए थे।

इमाम हसन[अ०] ने सुल्ह क्यों की?

इमाम हसन[अ०] ने सुलह क्यों की? और इक़्तेदार को मुलूकियत के अलमदार और जाहिली बग़ावत के सरबराहों के हवाले क्यों कर दिया? इस सवाल के जवाब के लिए लाज़िम है कि मन्दरजाज़ेल नुकात पर नज़र रखें।

1- पहली बात ये कि चूँकि सलतनते रूम, शाम और ईरान के लोग हज़ारों की तादाद में ग़लत सियासत 'मिक़दार' की तरफ झुकाव और 'मेयार' की तरफ़ से लापरवाही की वजह से मुसलमान तो हो गये थे मगर उनके ख़यालात और फ़िक्र में किसी क़िस्म की तबदीली नहीं हुई थी। लेहाज़ा जब उन्हें मुलूकियत में अपनी पहले वाली तहज़ीब, अख़लाक़ और तर्ज़े फ़िक्र की झलकियाँ नज़र आयीं तो इमाम हसन[अ०] की सरबराही के मुक़ाबले में जाहिलियत के तदरीजी इन्क़ेलाब के सरबराहों की मानने लगे। उन्हें इसी में बेहतरी और भलाई नज़र आयी।

नये मुसलमानों के क़ल्ब, ज़मीर और रगोपै में सही रूहे इस्लामी के सरायत न करने का नतीजा ये हुआ कि वह अपनी पिछली तहज़ीब, आदात और तर्ज़े फ़िक्र से मुमासेलत की बिना पर सलतनते रूम व ईरान के आदात, तहज़ीब और तर्ज़े फ़िक्र से आसानी से मानूस हो गये और उसी को अपना लिया। इस तरह मुआविया की हुकूमत के इस्तेक़रार और वरसे वाली सलतनत की बुनियाद की मज़बूती के लिए ज़मीन हमवार होती गयी। हम देखते हैं कि मुआविया का दारुस्सलतनत शाम है जहाँ के अवाम क़ैसर व किसरा के निज़ाम के आदी हो चुके थे।

पैग़म्बरे इस्लाम के बाद इस्लामी निज़ाम, जैसा कि हज़रत अली[अ०] चाहते थे, रायज न हो सका। "मेयार", "मिक़दार" पर क़ुर्बान हो चुका था। हज़रत अली[अ०] इस नज़रिये के हामी थे कि इस्लामी सलतनत की हुदूद और मुसलमानों की तादाद में इज़ाफ़े से ज़्यादा ज़रूरी मुसलमानों की मौजूदा तादाद में अक़ाएद व अख़लाक़ और पायदार किया जाना है। पैग़म्बरे इस्लाम[स०] के बाद के इब्तेदाइ बरसों में क़ुव्वते ईमान की बिना पर इस्लाम की सियासी सरहदों में बेमिसाल बढ़ोत्तरी हुई और मुख़तलिफ़ तहज़ीब,

अक़ाएद और मिल्लत के अफ़राद हलक़-ए-इस्लाम में दाख़िल हुए, मगर उनके इस अक़ीदती और फ़िक्री इन्क़ेलाब की तरफ मुनासिब तवज्जो नहीं दी गयी जिसकी हज़रत अली[अ०] सख़्त ताकीद फ़रमाते थे। दूसरों से अमीरुलमोमिनीन[अ०] के नज़रियाती इख़्तेलाफ़ के असबाब में ये बात भी शामिल थी। हम इसे ''मेयार'' को ''मिक़दार'' पर कुर्बान करना कहते हैं। तारीख़ी रू में मुसलमानों की बेइन्तेहा बदनसीबी की वजह यही है।

2- दूसरी बातः जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि ''मुलूकियत'' के मुक़ाबले में जिसका हतमी मक़सद इक़्तेदार है और जहाँ इस्लाम इस मक़सद के हुसूल का एक ज़रिया के अलावा कुछ नहीं। वहीं ''इमामत'' में आला मक़सद इस्लाम है जहाँ इक़्तेदार सिर्फ़ इस्तेक़रारे इस्लाम का एक ज़रिया है, जिसके वसीले से अगर इस्लामी ख़िदमात अन्जाम न दी जा सकें तो इक़्तेदार की कोई क़ीमत बाक़ी नहीं रहती। इमाम हसन[अ०] भी अगर मुआविया ही की तरह इक़्तेदार बचाने की ख़ातिर हर काम अन्जाम देते, तो कोई शक नहीं अपने लिये ''ख़लीफ़तुल मुस्लिमीन'' का ख़िताब इख़्तियार कर सकते थे। मगर जैसे ही उन्हें महसूस हुआ कि इक़्तेदार के तहफ़्फ़ुज़ के बजाए इक़्तेदार छोड़कर ही इस्लाम से वफ़ा की जा सकती है, वैसे ही इक़्तेदार से दस्तबरदार हो गये, क्योंकि उनका मक़सद 'इस्लाम' था, इक़्तेदार नहीं था।

3- तीसरी बातः चूँकि इमाम हसन[अ०] एक ऐसे दुश्मन के मुक़ाबले पर थे जो इस्लाम का चोला ओढ़े हुए था, इसलिए सूरते हाल इन्तिहाई पेचीदा, मुबहम और ग़ैर वाज़ेह थी, साथ ही जाहिलियत की ऐसी तदरीजी बग़ावत से सामना था जिसके चेहरे पर इस्लाम की नक़ाब थी। इन हालात में उस से मुसल्लह जंग से किसी फ़ायदे की तवक़्क़ो न थी, इसलिए ज़रूरत इस बात की थी कि नया अन्दाज़ अपनाया जाये क्योंकि वह चाहते थे, ''क़ुरैश के जाहिलों'' के मकरूह चेहरे पर जो नक़ली इस्लाम की हसीन और दिलफ़रेब नक़ाब पड़ी हुई है, उसे तार-तार कर दिया जाए। इसके अलावा इमाम हसनअ० महसूस कर रहे थे कि एक चीज़ ऐसी थी जो मुआविया से भी बढ़कर ख़तरनाक थी और वह थी ''तहज़ीबे मुआविया'' या ''मुलूकियत'' चुनानचे ऐसे इक़दाम की ज़रूरत थी जिससे ''आमेज़िश'' का ख़ातमा हो जाए और इस्लाम और उसूले इस्लाम और सीरते सलातीन से बिल्कुल अलग हो जायें।

इस दौर के हालात और मेयार (यानी जौहरे इस्लाम) के मिक़दार (यानी मुसलमानों की तादाद) पर क़ुर्बान हो जाने के सबब से ''तहज़ीबे मुआविया'' की वुसअत के लिए ज़मीन बिलकुल हमवार थी ऐसे में ऐसी कारवाई की ज़रूरत थी जिससे मुआविया की (ज़ाहिरी) फतह ''तहज़ीबे मुआविया'' के ख़ातमे की सूरत में अबदी और दाएमी शिकस्त की आग़ोश में मौत की नींद सो जाए।

इमाम हसन[अ०] ने महसूस किया कि मुआविया को फ़ौजी पैमाने पर शिकस्त देना काफ़ी नहीं है और न ही ये सियासी हालात के एतेबार से आसान। इसलिए जो तरीक़ा तवील मुद्दत में दाएमी तौर पर असरअन्दाज़ हो सकता है, वह मुआविया की असलियत को बेनक़ाब करता है। इसलिए इमाम हसन[अ०] इस नतीजे पर पहुँचे कि मुआविया की असलियत को बेनक़ाब करने की बेहतरीन सूरत ये है कि इक़्तेदार उसके हवाले कर दिया जाए ताकि उसकी असली शक्ल ज़ाहिर हो जाए, मुआविया यज़ीद की शक्ल इख़्तियार करे और 'नक़ाबपोश निफ़ाक़', 'बेनक़ाब कुफ़्र' की सूरत इख़्तियार कर ले, उसका नक़ली लबादा तार-तार हो जाए ताकि उम्मत और तारीख़ के लिए फ़ैसला आसान और हक़ और बातिल में फ़र्क़ हो जाए।

इमाम हसन[अ०] ने बज़ाहिर मुआविया को फ़तहमन्द हो जाने दिया ताकि तहज़ीबे मुआविया का तिलस्म अपने आप टूट जाए। जिस तरह एक माहिर तबीब या डाक्टर

जर्राही (सर्जरी) से पहले मरज़ के ग़ुदूद को काफी हद तक बढ़ जाने की मोहलत देता है और फिर उसके बाद एक ही अमल जर्राही के ज़रिये मरज़ को ख़त्म कर देता है। बिल्कुल उसी तरह इमाम हसन[अ०] ने अपनी सुलह के ज़रिये मुलूकियत की सरतानी ग़ुदूद को अपनी इन्तेहा तक पहुँच जाने की मोहलत दे दी ताकि वारिसे हसन[अ०] सैय्यिदुश्शोहदा हज़रत इमाम हुसैन[अ०] अपने एक ही अमल जर्राही से उसे जड़ से उखाड़ फेंकें।

ऊपर लिखे गये अहम नुकात का ग़ायराना जायज़ा हमें ये बताने के लिए काफ़ी है कि इमाम हसन[अ०] की सुलह की वजहें क्या थीं?

इमाम हसन[अ०] ने तर्के इक़्तेदार के ज़रिये किस तरह इस्लाम की हिफ़ाज़त की?

जैसा कि हमने पहले भी इस बात की तरफ़ इशारा किया है कि इक़्तेदार मुआविया का हतमी मक़सद था और इस्लाम मक़सद बरआवरी का वसीला। इसके बरअक्स इमाम हसन[अ०] के लिए ''इस्लाम'', ''मक़सद'' था और इक़्तेदार उसका एक मुमकिना वसीला, इसलिए जब आपने ये देखा कि इक़्तेदार में रहने से नहीं बल्कि इक़्तेदार छोड़ देने से इस्लाम की हिफ़ाज़त हो सकती है तो आप इक़्तेदार से दस्तबरदार हो गये।

इक़्तेदार छोड़ने से इस्लाम का तहफ़्फ़ुज़ क्योंकर होता है? सबसे पहले इस नुकते की वजह से जिसका इशारा हम पहले ही कर चुके हैं कि यही एक ऐसा तरीक़ा था जिसके ज़रिये मुआविया की असलियत से नक़ाबकुशाई की जा सकती थी और ''तहज़ीबे मुआविया'' के तिलस्म को तोड़ा जा सकता था, इसकी वक़्ती फ़तह एक अबदी शिकस्त में तबदील हो सकती थी और उसकी तहज़ीब इतिहास का काला पन्ना हो सकती थी।

दूसरे ये कि अगर इमाम हसन[अ०] भी उसी अन्दाज़ में मुआविया के मुक़ाबिल आते तो मुमकिन था कि अवाम ''हक़'' और ''बातिल'' की असल जंग को समझने से क़ासिर रह जाती और मुमकिन था कि तारीख़ इस जंग को सिर्फ़ एक ''हुसूले इक़्तेदार'' की जंग का नाम दे देती।

इमाम हसन[अ०] इस जंग को ''हुकूमती जंग'' के बजाए ''अवामी जंग'' की शक्ल देना चाहते थे, इक़्तेदार से इक़्तेदार का मुक़ाबला करने के बजाए वह ''हक़ीक़त'' के ज़रिए ''इक़्तेदार'' की सरकोबी करना चाहते थे। उनकी इसी जंगी हिकमते अमली (Stratigy) का तकमला कर्बला है। इमाम हसन[अ०] ने जिस जंग का आग़ाज़ किया था इमाम हुसैन[अ०] ने उसे अन्जाम को पहुँचाया। इमाम हुसैन[अ०] ने कर्बला में इक़्तेदार को अपने लहू से टुकड़े-टुकड़े कर दिया और इस तरह झुकाया कि तारीख़ के किसी दौर में उसका सर ऊँचा नहीं हो सकता। यूँ तो मारक-ए-कर्बला के अज़ीम मुजाहिद (हीरो) इमाम हुसैन[अ०] थे मगर जंगी हिकमते अमली का आग़ाज़ इमाम हसन[अ०] ही ने किया था।

''ज़ुल्म'' के बदले ''मज़लूमियत'' और ''तलवार'' के मुक़ाबले में ''ख़ून की धार''

इमाम हसन[अ०] ने ज़ुल्म का मुक़ाबला मज़लूमियत के असलहे और शमशीर का मुक़ाबला ख़ून से करने की बुनियाद रखी और इमाम हुसैन[अ०] ने उसे नतीजे की आख़िरी मन्ज़िल तक पहुँचाया। ये सोचना दुरुस्त है कि इमाम हसन[अ०] ने सुलह की थी और इमाम हुसैन[अ०] ने जंग। मगर इमाम हसन[अ०] ने अपनी सुलह के ज़रिये ऐसे राहे अमल का तअय्युन कर दिया था जिसका मन्तिक़ी और लाज़मी नतीजा था जंग, शहादत और फ़त्हे हुसैन[अ०]। इमाम हुसैन[अ०] का अमल इमाम हसन[अ०] की पालीसी का सिलसिला है। ये इमाम हसन[अ०] ही थे जिन्होंने ''ज़ुल्म'' के मुक़ाबले में ''मज़लूमियत'', शमशीर के मुक़ाबले में ''ख़ून'', इक़्तेदार के मुक़ाबले में हक़ीक़त और हुकूमत के मुक़ाबले में अवामी जंग का आग़ाज़ किया और इमाम हुसैन[अ०] ने उसी तैय शुदा अमल को मेराज तक पहुँचाया।

इमाम हसन[अ०] और इमाम हुसैन[अ०] की इस हिकमते अमली से एक कसीफ़ हाकिम की हुकूमत रुसवा हुई। इससे भी अहम ये कि इस्लाम और नाम नेहाद मुसलमानों की हुकूमत की कारस्तानियों के दरमियान एक बीच की दीवार क़ायम हो गयी यही हमारे पेशवायाने दीन की जंग की सबसे बड़ी फ़तह और कामयाबी है। ये काम भी किसी तरह फ़ौजी इक़्तेदार के ज़रिये नहीं हो सकता था और उस ज़माने के सियासी हालात भी इसके लिये साज़गार न थे।

इमाम हसन[अ०] ने देखा कि फ़ौजी और सियासी कुव्वत के एतेबार से हालात पूरे तौर पर मुआविया के हामी हैं और अगर ग़ैर मुतवाज़न मुसल्लह मुक़ाबले में वह और उनके साथी शहीद भी हो जाएं तो इसकी शहादत से कोई इफ़ादी पहलू बरआमद नहीं होता क्योंकि अब तक निफ़ाक़ के चेहरे पर पड़ी हुई नक़ाब हटी नहीं है लेहाज़ा मुमकिन है कि आइन्दा की नसलें और तारीख़ इस जंग को हाकिमे शाम और हाकिमे इराक़ के दरमियान दौलत व इक़्तेदार की एक आम जंग से ताबीर करके रह जाएं। इसी वजह से इमाम हसन[अ०] ने अपनी सुलह के ज़रिये एक तरफ़ तो इस जंग को दो हाकिमों की जंग के बजाए ''अवाम'' और ''हुकूमत'' की जंग की शक्ल दे दी, दूसरी तरफ अपनी बची हुई कुव्वत को महफूज़ रखा ताकि इज़्हारे हक़ीक़त हो सके और जंग की सूरत तबदील होकर ''इक़्तेदार'' के मुक़ाबले में ''इक़्तेदार'' के बजाए ''हुकूमत'' के मुक़ाबले में अवामी जंग की सूरत इख़्तिार कर ले और एक वक़्त ऐसा आए जब उमवियों के मकरूह चेहरे पर पड़ी हुई इस्लाम की झूठी नक़ाब तार-तार हो जाए और उनकी असली सूरतें बेनक़ाब हो जाएं और वही सही वक़्त होगा जब शहादतें कारसाज़ होंगी। इमाम हुसैन[अ०] अपनी बची हुई थोड़ी कुव्वत के साथ हुकूमत से टकराए। अब कोई ये नहीं कह सकता कि दो हाकिमों की जंग थी क्योंकि ''निफ़ाक़'' के मकरूह चेहरे से नक़ाब हट चुकी थी, हक़ीक़त ज़ाहिर हो चुकी थी और ज़ुल्म रुसवा हो चुका था।

इसी तरह लेबनान के आलिम व मुजाहिदे आज़म अल्लामा शरफ़ुद्दीन ने लिखा है: अक़लमन्द की नज़र में रोज़े साबात (यौमे सुलहे इमाम हसन[अ०]) की फ़िदाकारी के वाक़िआत रोज़े आशूरा से ज़्यादा मुस्तहकम हैं। यौमे आशूरा की शहादत पहले तो हसनी शहादत है, बाद में हुसैनी है क्यों कि ये इमाम हसन[अ०] ही थे जिन्होंने तहरीके आशूरा के वजूद में आने के लिए राह हमवार की और इस तहरीक के नताएज को ज़माने के आगे पेश करने के क़ाबिल बनाया।

इमाम हसन[अ०] और इमाम हुसैन[अ०] का अमल बताता है कि हक़ और बातिल की तवील मुद्दती जंग का मक़सद एक ही है। अलबत्ता ज़मानो मकान के तक़ाज़े से हिकमते अमली और तरीक़-ए-जंग में फ़र्क़ हुआ है क्योंकि हर जंग का तरीक़ा और नक़शा अपनी और दुश्मन की ताक़त का अन्दाज़ा करने के बाद मुरत्तब किया जाता है। इसलिए कभी मुसल्लह मुक़ाबला कारगर होता है और कभी असलहों के मुक़ाबले पर मज़लूमियत और शमशीर के मुक़ाबले पर ख़ून से मुक़ाबला किया जाता है। ✦✦✦

अज़ीम मजालिस

इन्शाअल्लाह इस साल सफ़वतुल उलमा मौलाना सै० कल्बे आबिद[ताबासराह] के ईसाले सवाब के सिलसिले की सालाना मजलिसें 3-4 अकटूबर 2009[ई०] (बरोज़ सनीचर-इतवार) को इमामबाड़ा ग़ुफ़रानमआब में होंगी। मोमिनीन से शिरकत की गुज़ारिश है।